Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 3 | Issue 1 | (Jan – Mar 2026)

फिल्मी शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय गीतों में लोकधुनों का प्रभाव

डॉ. रेखा कुमारी
संगीत शिक्षिका - धारावती +2 उच्च विद्यालय, लखनौर, मधुबनी

शोध सार

वर्तमान काल में चित्रपट संगीत का प्रचलन अत्यंत ही व्यापक ढंग से किया जाता है। आधुनिक समय में सम्पन्न होने वाले प्रत्येक कार्यक्रम, चाहे किसी भी प्रकार का हो, उसमें संगीत के बिना रंगत ही नहीं आती है। यह प्रथा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। प्राचीन काल में भी समाज में संगीत की तीन धाराओं का प्रचलन था, जिन्हें पूर्ण धार्मिक, पूर्ण लौकिक और धार्मिक-लौकिक के नाम से जाना जाता है। धार्मिक संगीत को मार्गी संगीत या सामगान के समतुल्य माना गया है। लौकिक संगीत की तुलना देशी संगीत या गाथा-गान से की गई है। यही देशी संगीत वर्तमान समय में उपशास्त्रीय संगीत के नाम से प्रचलित हुआ। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक उपशास्त्रीय संगीत का प्रचलन बहुत ही सुंदर तरीके से समाज में स्वतंत्र रूप से किया जाता था। 19वीं शताब्दी के मध्य में संगीत के एक नए प्रकार का उदय हुआ, जिसे फिल्म संगीत के नाम से जाना जाता है। फिल्म संगीत के प्रारंभिक चरणों में अधिकतर शास्त्रीय गायकों ने उसे आगे बढ़ाने में योगदान दिया, जिसके कारण आज भी पुराने फिल्म संगीत में रागदारी लोकसंगीत की स्पष्ट झलक दिखाई देती है।

मुख्य शब्द: संगीत, फिल्म, उपशास्त्रीय, धुन, सामगान, देशी

मूल आलेख

संगीत एक ऐसी प्राचीन परंपरा है, जिसका विकास दिनों-दिन प्रकृति की गति के साथ बढ़ता जा रहा है। आज चारों ओर संगीत का प्रचार-प्रसार इतना बढ़ गया है कि इसके बिना कोई भी कार्यक्रम सम्पन्न नहीं होता। आज प्रत्येक क्षेत्र में जब किसी भी तरह के समारोह का आयोजन किया जाता है, तो संगीत उसका एक अभिन्न अंग बन गया है, जिसकी सहायता से दर्शकों का मनोरंजन किया जाता है। जन्म, मुंडन, शादी-विवाह, अंत्येष्टि-क्रिया तथा भगवान की पूजा-अर्चना में सबसे पहले संगीत को ही स्थान दिया जाता है। प्रकृति की गोद में पले मानव के सद्प्रयासों के द्वारा उभरता हुआ संगीत, सृष्टि के साथ ही मनुष्य के मन को सदा आनंदित करता आया है। हृदय के तारों को झंकृत कर देने वाला यह संगीत, ईश्वर द्वारा मानव को दिया गया एक बहुमूल्य उपहार है।

आधुनिक समय में हम देखते हैं कि रेडियो एवं दूरदर्शन पर सौंदर्य-प्रसाधन के जितने भी विज्ञापन प्रसारित किए जाते हैं, वे बिना संगीत के सम्पन्न ही नहीं हो सकते। 'उपशास्त्रीय' शब्द 'शास्त्रीय' शब्द में 'उप' उपसर्ग लगने से बना है। हिन्दी व्याकरण के अनुसार 'उप' शब्द का अर्थ समीप, पास, नजदीक, बगल तथा निकट आदि होता है। अर्थात् वह गायन-शैली, जो शास्त्रीय संगीत के बिल्कुल नजदीक हो, उसे हम 'उपशास्त्रीय संगीत' कहते हैं। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि शास्त्रीय एवं लोक संगीत के मिश्रण से जिस संगीत-शैली का जन्म हुआ, उसे 'उपशास्त्रीय' संगीत-शैली कहा जाता है। जिस प्रकार रागों में नियम, स्वर लगाने का तरीका, गायन-समय, वादी-सम्वादी आदि का बंधन होता है, लेकिन उपशास्त्रीय संगीत में ऐसा बन्धन नहीं होता है। इस शैली का लक्ष्य केवल श्रोताओं को आनंद प्रदान करना होता है। इस शैली में यह निश्चित नहीं होता कि जिस राग में हम गायन प्रारम्भ करते हैं, उसी राग के अनुसार स्वरों का प्रयोग करना है। यदि अन्य रागों के स्वरों का प्रयोग करने से गायन में सौंदर्य एवं मधुरता आती है, तो हम उन रागों के स्वरों का प्रयोग कर सकते हैं। इसलिए इस गायन-शैली में प्रायः मिश्र रागों का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान समय में इस शैली का गायन बहुत ही कुशलता के साथ गायक करते हैं।

वर्तमान समय में शास्त्रीय संगीत के गायन की समाप्ति के बाद अधिकतर गायक कम-से-कम एक उपशास्त्रीय शैली का गायन अवश्य करते हैं, और विशेषकर श्रोताओं की फरमाइश भी होती है। ऐसा उपशास्त्रीय संगीत के सुगम, भाव-प्रधान तथा चपल ताल-प्रयोग के कारण सम्भव होता है। इस शैली में शास्त्रीय पक्ष की अपेक्षा अधिक रस-भाव एवं रस-सौंदर्य प्रकट होते हैं। धीरे-धीरे इस शैली के श्रोताओं की संख्या भी शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा बढ़ रही है। इस शैली में पद को साहित्य का आधार मानकर उसके भाव-पक्ष पर अधिक बल दिया जाता है। इन भावों को स्पष्ट करने का माध्यम स्वर ही है, जिसके प्रयोग से विभिन्न भावों को प्रकट किया जाता है। ऐसे संगीत में श्रृंगारिक भावना अधिक होता है तथा शैली रसीली भी होती है। इसलिए इस शैली का गायन गम्भीर राग या ताल में नहीं किया जाता है। कुछ विद्वान इसे चंचल प्रकृति का संगीत भी कहते हैं। इस गायन-शैली के लिए चंचल प्रकृति के रागों का होना आवश्यक माना जाता है। इसका कारण यह है कि इस शैली पर गम्भीरता का प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु इसका गायन सरल नहीं है।

प्रस्तुत शैली में स्वर लगाने की चमत्कारिकता पर अधिक बल दिया जाता है, इसलिए इस शैली के गायन के लिए विशेष रियाज की आवश्यकता होती है। आधुनिक काल में जब कोई गायक इस गायन-शैली को सीखना चाहता है, तो सर्वप्रथम उसका गला तैयार किया जाता है, क्योंकि जब तक गायक का गला इच्छानुसार नहीं घूमता, तब तक इस गायन-शैली का गायन सम्भव नहीं है। इस संगीत की उत्पत्ति किसी एक समय या किसी एक व्यक्ति विशेष द्वारा हुई हो, ऐसा नहीं है। संगीत का जो विकसित स्वरूप आज हमारे सामने दिखाई देता है, वह अनेक परिस्थितियों से गुजरते हुए एवं कई कठिनाइयों को झेलते हुए विकसित हुआ है, जिसके कारण इसके स्वरूप में धीरे-धीरे निखार आता गया।

जिस प्रकार कोई भी गायक जितना अधिक रियाज करता है, उसका गला उतना ही मधुर एवं लचीला बन जाता है, सम्भवतः यही स्थिति संगीत के साथ भी हुई है। वह जितने गायकों के गले में गया, उसके स्वरूप में उतना ही निखार एवं परिवर्तन होता गया और कई वर्षों की यात्रा के बाद उसका शुद्ध एवं परिष्कृत रूप आज हमारे सामने देखने को मिलता है।

लोक संगीत दो शब्दों से मिलकर बना है— 'लोक' और 'संगीत'। इसका सामान्य अर्थ है लोगों का संगीत। लोक संगीत लोक-निर्मित, लोक-प्रचलित एवं लोक-विषयक होना चाहिए। यह संगीत लोक के साथ जुड़ा हुआ है, इसलिए यह शास्त्रीय संगीत से भी पुराना है। इस प्रकार लोक संगीत का जन्म लोक के जन्म के साथ ही माना जा सकता है। महात्मा गांधी ने भी कहा है— "लोक संगीत में चराचर जगत गाता है और नृत्य करता है।" लोक संगीत किसी भी देश तथा उसके राज्यों की पहचान होता है। लोक संगीत से किसी भी राष्ट्र की कला, वहाँ के जनजीवन और इतिहास का भी बोध होता है।

लोक कलाएँ मुख्यतः तीन प्रकार की होती हैं—

1. लोक गीत
2. लोक नृत्य
3. लोक नाटिकाएँ

इन तीनों कलाओं को अलग-अलग या एक ही प्रदर्शन में सम्मिलित किया जा सकता है। लोक कलाएँ किसी भी देश के सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, आर्थिक और राजनीतिक कारकों से प्रभावित होती हैं। तीनों ही लोक कलाओं में संगीत का विशेष महत्त्व होता है। लोक गीत की व्याख्या करते हुए श्री हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव जी ने *राग परिचय (भाग-1)* में कहा है कि यह ग्रामीणों का गीत है। इसके अन्तर्गत शादी के गीत, विभिन्न संस्कारों पर गाए जाने वाले गीत, चैती, कजरी, आल्हा, बिरहा, लोरी, बाऊल, माहिया, भटियाली, मांझी आदि लोकगीत आते हैं।

इनका स्वरूप सरल, भावपूर्ण, कुछ स्वरों के भीतर सीमित तथा लय-प्रधान होता है। इन गीतों को सुनते ही साधारण व्यक्ति भी ताली देने लगता है। इस संगीत का प्रचार-प्रसार इतना हुआ कि इसकी धुनों का प्रयोग फिल्म संगीत में भी होने लगा।

फिल्मी गीतों की धुनों का निर्माण लोक संगीत की धुनों से ही हुआ है, यह बात सर्वप्रचलित है और इसके बारे में कोई टिप्पणी नहीं की जा सकती है। यदि संगीत की उत्पत्ति के सिद्धांत का अध्ययन किया जाए, तो यह बात उभरकर सामने आती है कि केवल फिल्मी ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण संगीत की उत्पत्ति ही लोक संगीत से हुई है। इसके बारे में कई संगीत के विद्वानों ने अपने मत प्रस्तुत किए हैं। सर्वप्रथम मनुष्य के समीप, मनोरंजन की दृष्टि से जब संगीत का निर्माण हुआ, तब पहले इसी प्रकार के संगीत का निर्माण हुआ। उस समय शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम आदि संगीत के शब्द प्रचलित नहीं थे, बल्कि सम्पूर्ण संगीत के लिए केवल 'संगीत' शब्द का ही प्रयोग किया जाता था।

प्राचीन काल में साधारण लोगों के लिए गान के एक प्रकार का प्रयोग किया जाता था, जिसे गाथा-गान या नराशंसी संगीत कहा जाता था, जिसके अंतर्गत किसी वीर पुरुष की गाथाओं का गायन किया जाता था। धीरे-धीरे समय के परिवर्तन के साथ संगीत में भी परिवर्तन हुआ और इसी लोक संगीत की धुनों में शुद्धिकरण करके पढ़े-लिखे संगीत विद्वानों ने शास्त्रीय, उपशास्त्रीय एवं सुगम आदि संगीत के प्रकारों की धुनों का निर्माण किया, जिन्हें शास्त्रकारों ने 'राग' के नाम से संबोधित किया।

इन रागों की उत्पत्ति लोक संगीत की धुनों से हुई है, यह बात स्पष्ट है। आधुनिक समय में ऐसा देखने को मिलता है कि अब फिल्मों में लोक एवं उपशास्त्रीय संगीत के प्रकार— कजरी, चैती, होरी, ठुमरी, टप्पा आदि की धुनों का प्रयोग किया जाता है। इन गीतों में ग्रामीण क्षेत्रों में प्रयोग किए जाने वाले सरल शब्दों का उपयोग किया जाता है, जिससे इनकी सुंदरता में चार चाँद लग जाते हैं। फिल्मों का निर्माण लगभग 19वीं शताब्दी के अंत में प्रारम्भ हुआ और धीरे-धीरे अपनी विकास-यात्रा शुरू की। प्रारम्भ में मूक (अनबोलती) फिल्मों का निर्माण हुआ था, जिसमें कोई व्यक्ति बैठकर उस फिल्म के कथानक को समझाता था। बाद में इसमें ध्वनि जोड़ी गई और इसके बीच-बीच में गीतों का भी प्रयोग किया जाने लगा।

आज कई फिल्मी गीतों में उपशास्त्रीय संगीत से मिलते-जुलते शब्दों एवं धुनों का प्रयोग किया जाता है, जिन्हें सुनकर श्रोताओं के मन के तार झंकृत हो उठते हैं। सामान्यतः यह देखा गया है कि अब अधिकतर फिल्मी गीतों में ग्रामीण शब्दों का प्रयोग किया जाता है। ग्रामीण शब्दों के प्रयोग से यह भी देखा गया है कि उन फिल्मों की मांग ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक होती है। फिल्मों की मांग के अनुसार फिल्म-निर्देशक भी उसी परिवेश के शब्दों का अधिक प्रयोग करते हैं, जिससे उनकी लोकप्रियता बढ़ती है। उपशास्त्रीय संगीत की कई बंदिशें ऐसी हैं, जिनमें लोक संगीत के शब्द एवं धुनों का प्रयोग किया जाता है।

महान फिल्म-निर्देशक राज कपूर ने अपनी निर्देशित फिल्मों में कम-से-कम दो ऐसे गीतों का प्रयोग किया है, जिनकी धुनें लोक संगीत पर आधारित हैं, जबकि उनके शब्द उपशास्त्रीय शैली के होते हैं। ऐसे एक नहीं, बल्कि अनेक फिल्मी गीतों में लोक संगीत की धुनों का प्रभाव देखने को मिलता है, जैसे— "मुन्नी बदनाम हुई", "तार बिजली से पतले हमारे पिया", "रमैया वस्तावैया", "झूठ बोले कौआ काटे" आदि। इन गीतों की धुनें पूर्णतः लोक संगीत पर आधारित हैं और ये हमारे मन के तारों को झंकृत करती हैं।

शास्त्रीय संगीत पर आधारित कई फिल्मी गीत भी हैं, जिनमें से कुछ प्रसिद्ध उदाहरणों में फिल्म 'दिल ही तो है' का प्रसिद्ध गीत "लागा चुनरी में दाग" राग भैरवी पर आधारित है। इस गीत में शब्दों एवं धुनों का चयन अत्यंत सुंदर ढंग से किया गया है। इस गीत के गीतकार साहिर लुधियानवी हैं तथा संगीत-निर्देशक रोशन हैं। इसे मन्ना डे ने अपनी खूबसूरत आवाज से संवारा है और यह गीत राज कपूर एवं नूतन पर फिल्माया गया है। फिल्म 'बैजू बावरा' का प्रसिद्ध गीत "मन तड़पत हरि

दर्शन को आज" राग मालकौंस पर आधारित है। इस गीत के गीतकार शकील बदायूँनी और संगीत-निर्देशक नौशाद हैं। इसे मोहम्मद रफी ने अपनी मधुर आवाज से संवारा है और यह गीत भारत भूषण पर फिल्माया गया है।

फिल्म 'मदर इंडिया' का प्रसिद्ध गीत "होरी आई रे कन्हाई" राग मिश्र काफी पर आधारित है। इस गीत के गीतकार शकील बदायूँनी और संगीत-निर्देशक नौशाद थे। इसे शमशाद बेगम ने सुंदर आवाज में संवारा है और यह गीत सुनील दत्त एवं नर्गिस पर फिल्माया गया है। इस प्रकार और भी कई फिल्मी गीत हैं, जिनके पद लोकगीत जैसे तथा उनकी धुनें शास्त्रीय-उपशास्त्रीय शैली की प्रतीत होती हैं। ये गीत शास्त्रीय रागों की संरचना को लोक धुनों की सरलता के साथ जोड़ते हैं। आधुनिक समय में सुगम संगीत के पदों में भी साधारण लोकधुनों एवं पदों का प्रयोग किया जाता है।

निष्कर्ष:

सामान्यतः लोगों का मानना है कि शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत में पदों का निर्माण लोकगीतों के पदों से चुनकर ही किया गया है। शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत की कई बंदिशें आज भी सुनने को मिलती हैं, जिनके पद साधारण लोगों से जुड़े हुए प्रतीत होते हैं। संभवतः इसी कारण से फिल्मों में भी इन धुनों का प्रयोग अधिक किया जाता है। फिल्मों का संबंध साधारण लोगों से अधिक होने के कारण, इसमें लोक संगीत के पदों का प्रयोग करने से इसकी रोचकता और बढ़ जाती है तथा लोग इसे अधिक गहराई से देखते एवं सुनते हैं।

संदर्भ सूची:

1. राग परिचय, भाग-1 — हरिचन्द्र श्रीवास्तव, प्रकाशक: साउथ मलाका, इलाहाबाद, संस्करण: 2011
2. संगीत विशारद — बसंत, प्रकाशक: संगीत कार्यालय, हाथरस, संस्करण: 2013
3. संगीत में नेट सफलता के पथ — डॉ. निशा रावत, प्रकाशक: संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण: 2010
4. भाव संगीत का संगम — महावीर प्रसाद मुकेश, प्रकाशक: संगीत सदन, इलाहाबाद, संस्करण: 1992
5. भारतीय संगीत का इतिहास — ठाकुर जयदेव सिंह, प्रकाशक: विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण: 2002